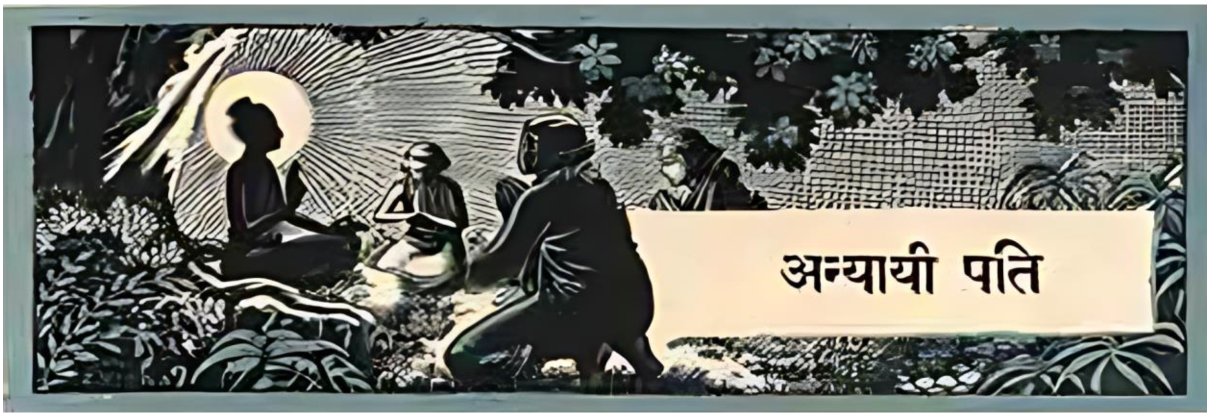

जब ब्रह्मदत्त काशी का राजा था, बोधिसत्व उसके पण्डित अमात्य के रूप में पैदा हुए। एक बार की बात है कि ब्रह्मदत्त, अपने पुत्र पर बहुत ही क्रुद्ध हुआ और उसको उसने राज्य से बाहर भेज दिया। राजा के लड़के को परदेश में, अपनी पत्नी के साथ, बहुत कष्ट सहने पड़े। उनके पास न पहनने के कपड़े थे, न धूप वर्षा से बचने के लिए ठीक छत ही। खाने के तो लाले थे ही। पर उसकी पत्नी ने बिना कोसे-कुढ़े, पति के साथ सब कष्ट सहे।

कुछ दिनों बाद ब्रह्मदत्त मर गया। उसका लड़का अब आसानी से अपने राज्य में आ सकता था। जब राजकुमार को यह पता लगा कि उसके पिता की मृत्यु हो गई है, वह बहुत ही आनन्दित हुआ। अब वह इसी चिन्ता में था कि कब काशी पहुँचा जाय और कब राज-सिंहासन पर बैठा जाय। वह काशी की ओर जल्दी जल्दी चल पड़ा। पर उस मूर्ख को यह भी न पता था कि उसकी पत्नी, उसके साथ तेज़ी से नहीं चल सकती, उसने भी उसके साथ अनेक कष्ट सहे हैं, इसलिये उसको पत्नी की परवाह करनी चाहिये। वह रात-दिन, चलता रहा, साथ अपनी पत्नी को भी अविराम चलाता गया।

पर वह भी बिना खाये-पिये कितनी दूर जा सकता था? पत्नी को जैसे भूख सता रही थी, उसे भी सताने लगी। भूखे-प्यासे, चलते चलते वे एक गाँव में पहुँचे। वहाँ कई ने इनकी बुरी हालत देखकर कहा- "बेटा! लगता है, बड़े भूखे हो। खाली पेट चलते जा रहे हो। कुछ खाने-पीने के लिए बाँधकर ले जाओ।"

ब्रह्मदत्त का लड़का, पत्नी को एक जगह आराम करने के लिए कह स्वयं भोजन देनेवालों के साथ चल दिया। उन्होंने दोनों के लिए, खाने की चीजें एक पोटली में बाँधकर दी। पोटली लेकर पत्नी के पास जाते हुए उसने इस प्रकार सोचा:

"अगर इस भोजन को दोनों ने मिलकर खाया तो जल्दी ही भूख लगेगी। फिर न जाने भोजन मिले कि नहीं। उसको अभी बहुत दूर जाना था। उसका काशी पहुँचना आवश्यक था, न कि उसके पत्नी का। सच पूछा जाय, तो जल्दी पहुँचने में वह ही रुकावट पैदा कर रही थी। इसलिये, कुछ भी हो, उसे ही उस पोटली का सारा भोजन खा लेना चाहिये।

यह सोचता हुआ वह पत्नी के पास पहुँचा और उसने उससे कहा-"तुम आगे आगे चलो, मैं जरा शौच आदि से निवृत्त हो जाऊँ।" उसकी पत्नी, उसकी बातों का विश्वास कर, आगे चलती गई। उसके जाने के बाद, राजकुमार ने स्वयं सारा खाना खा लिया, और खाली पत्तों की पोटली बाँधकर उसके पीछे चल दिया। जल्दी जल्दी उससे जा मिला। उसने पोटली खोलकर उसे दिखाते हुए कहा-"गाँववाले बड़े धोखेबाज़ हैं, ठग हैं। खाली पत्ते बाँधकर दे दिये।"

उसकी पत्नी सच जान गई, पर उसने कुछ कहा नहीं। थोड़े दिन और सफ़र करने के बाद वे जैसे-तैसे काशी पहुँचे। ब्रह्मदत्त के लड़के का पट्टाभिषेक हुआ और वह राजा बना दिया गया।

जब वह राजा हो गया तो उसने अपनी पत्नी की पूछ ताछ करनी ही बिल्कुल छोड़ दी। उसे यह ख्याल भी न आया कि पत्नी को भी, जिसने उसका कष्टों में साथ दिया था, उसके सुख में भी हिस्सा लेना का हक़ था।

उसने अच्छा पहना है कि नहीं, खाया है कि नहीं, इन बातों के बारे में, राजा ने कभी भूलकर भी न पूछा। यद्यपि कष्ट के दिन गुजर गये थे, पर रानी अब भी पहले की तरह हमेशा चिन्तित रहती।

राजा के पास बोधिसत्व पण्डित आमात्य के पद पर काम कर रहे थे न? रानी की हालत उनको मालूम हुई और वे रानी को स्वयं देखने गये। रानी ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया।

"आपका कष्ट काल समाप्त हो गया है। अब अच्छा समय प्रारम्भ हुआ है, इसलिये राजा ने हम सब को बहुत दान-दक्षिणा भी दी है। परन्तु आपके हाथ से मुझे अभी तक कुछ न मिला।" बोधिसत्व ने रानी से कहा।

"अमात्य! मैं केवल नाम मात्र के लिए रानी हूँ। परन्तु वस्तुतः मुझ में और अन्तःपुर की दासियों में कोई अन्तर नहीं है। वह रानी भी क्या रानी कहलायेगी, जो राजा के साथ कष्ट तो सहे, पर उसके सुख में सम अधिकारिणी न हो। आप ही बताइये।" कहते हुए रानी ने यह भी

बताया कि कैसे रास्ते में राजा ने बिना उसको कुछ खाने को दिये, स्वयं सारी पोटली खतम कर दी थी। अब भी मेरा पति यह नहीं सोचता कि मैं सुखी हूँ कि नहीं, मेरे पास कपड़े हैं कि नहीं, मैं अच्छी तरह खा-पी रही हूँ कि नहीं। उनको मेरी कोई फिक्र ही नहीं है।" रानी की आँखों में आँसू आ गये।

"आप चिन्ता न कीजिये। यह बात आप के मुह सुनने के लिए ही मैं आया था। कल भरे दरबार में आपसे ये ही प्रश्न करूँगा, जो मैंने अभी पूछे थे। अगर आपने यही उत्तर दिये, तो मेरी जिम्मेवारी यह रहेगी कि

आपको किसी प्रकार का कष्ट न हो।" बोधिसत्व ने कहा।

अगले दिन दरबार में रानी भी आई। उनको देखकर बोधिसत्व ने कहा- "रानी जी के राज्य में आने के बाद नौकर-चाकरों की पूछ-ताछ नहीं हो रही है।"

रानी ने, जो जो बात बोधिसत्व से कही थी, दरबार में उन्हें फिर दुहरा दीं। जब उसने यह बताया कि राजा ने उसके हिस्से का खाना भी खुद खा लिया था, तो राजा बहुत ही शर्मिन्दा हुआ।

रानी के कथन के समाप्त होने के पहले ही बोधिसत्व ने कहा-"जब राजा आपके प्रति आदर नहीं दिखाते हैं, तब आपका उनके साथ रहना अनावश्यक है।" फिर उन्होंने एक संस्कृत का श्लोक पढ़ा जिसका अर्थ है :

(जिसने छोड़ दिया हो, उसको छोड़ा जा सकता है। ऐसे व्यक्ति का स्नेह न करो। विमुख मनवाले से न मिलो। पक्षी भी बिना फलवाले पेड़ों को छोड़कर फलवाले पेड़ पर चले जाते हैं। यह संसार विशाल है।)

"इसलिये आप संसार में ऐसी जगह चली जाइये, जहाँ आपका आदर होता हो।" बोधिसत्व ने कहा।

तुरन्त राजा सिंहासन पर से उतर आया, और बोधिसत्व के चरणों पर पड़ कहने लगा-"पण्डित अमात्य! मुझे क्षमा कीजिये। मेरी मर्यादा की रक्षा कीजिये। अब से मैं अपनी पत्नी के प्रति कभी उदासीन न रहूँगा। उसकी अच्छी तरह देखभाल करूँगा।"

तब से राजा-रानी, एक दूसरे का यथोचित सम्मान करते हुए, सुख से अपना जीवन व्यापन करने लगे।

[६]

[शिवदत्त की सलाह के अनुसार स्वयं समरसेन ने सेना का नेतृत्व स्वीकार कर लिया था न? सेना एकत्र करने के लिए नरवाहन को भेजा गया। वह जनता और सैनिकों द्वारा पिट-पिटाकर वापिस आया। आखिर लाचार हो मृगशालाधिपति ने पिञ्जड़ों में से क्रूर जन्तुओं को खोल दिया था। बाद में-]

जब शिवदत्त ने यह बताया कि समरसेन ने किस प्रकार के प्रश्न उससे पूछे थे, मन्दरदेव तो मुस्कराया।

"नगर के बाहर के शत्रु, और अन्दर की प्रजा दोनों ही चाहते थे कि राजा गद्दी से उतार दिया जाय? बाद में भले ही कोई राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ले। यही न?" मन्दरदेव ने गम्भीर होकर पूछा।

"हाँ हाँ" कहते कहते शिवदत्त ने सिर हिलाया। समरसेन को तब भली-भाँति सोचने-विचारने का समय न मिला। सब जगह गड़बड़ी थी। इसी कारण मैने कहा-"हाँ सेनापति! वर्तमान परिस्थिति यही मालूम होती है। अगर मुझ से पूछा जाय तो मैं यही कहूँगा कि राजा को गद्दी पर से उतारकर, नगर की प्रजा की सहायता से शत्रुओं को दबा देना अच्छा होगा।"

"यह मैं भी सोच रहा हूँ। चित्रसेन बूढ़ा हो गया है। उसका कोई उत्तराधिकारी भी नहीं है। सम्भवतः वे राज सिंहासन

छोड़ना स्वीकार कर लें। यदि एक बार नगर की प्रजा शान्त कर दी गई, तो बाहर के शत्रुओं का मुकाबला करना उतना कठिन न होगा।" सनरसेन ने अपना ख्याल दुहराया। वे चिन्तित जान पड़ते थे।

हम बातें कर ही रहे थे कि राजा चित्रसेन वहाँ आ ही पहुँचे। जिन लोगों ने राजा को उस तरफ आते देखा था, वे बड़े जोर से चिल्लाने लगे-"राजा का नाश हो, राजवंश का नाश हो। हम उनको नहीं चाहते, वे गद्दी से उतरें।"

चित्रसेन, हमारे नज़दीक आये। आते ही उन्होंने कहा-"समरसेन! हम सारी परिस्थिति जानते हैं, समझते हैं। किले के बुर्जे से मैंने सैकड़ों शत्रुओं को, आक्रमण के लिए सन्नद्ध होते देखा, उनके लगे हुए तम्बू भी देखे। नगर की प्रजा के आन्दोलन से भी मैं अपरिचित नहीं हूँ। वह राजा, जो अपने विनोद विलास में, प्रजा का कल्याण भूल जाये, वह राज-सिंहासन पर बैठने लायक नहीं है। मैं प्रजा की इच्छा के अनुसार केवल राज सिंहासन का ही त्याग नहीं करना चाहता, बल्कि उससे

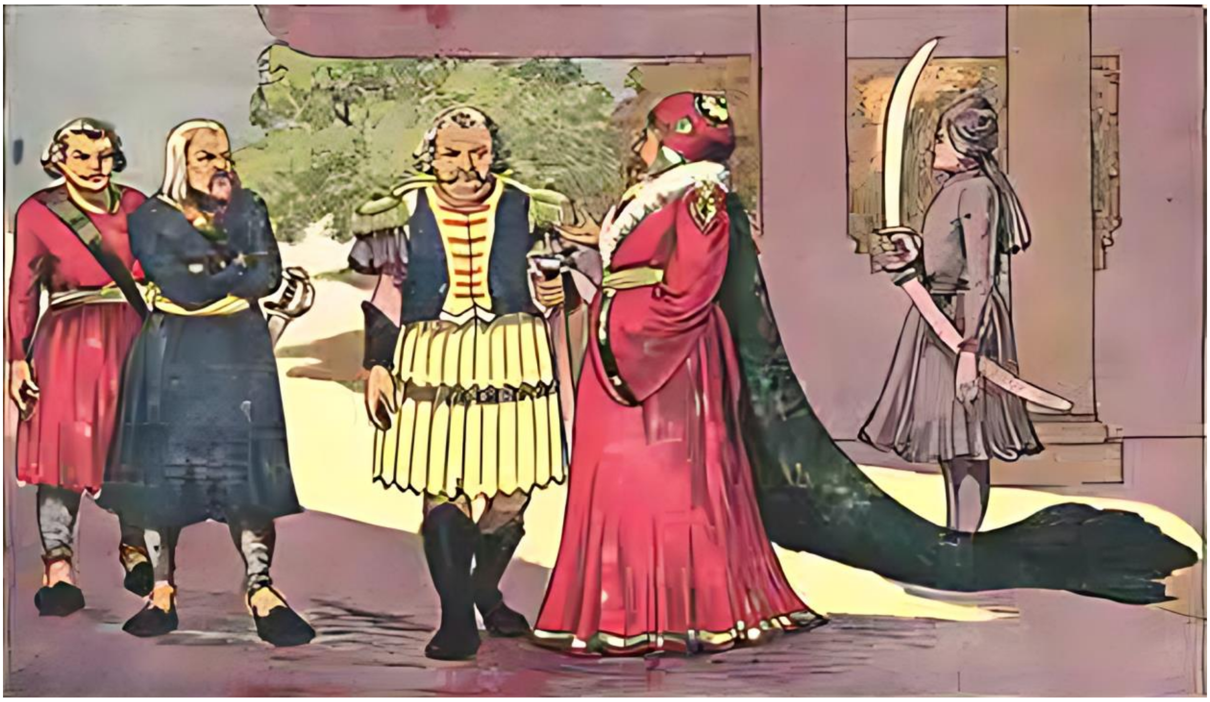

बड़ा त्याग करना चाहता हूँ।" कहता कहता राजा मण्डप में आया।

चित्रसेन की यह बात सुनकर मैं और समरसेन हक्के-बक्के रह गये। हमारे मुख से बात तक न निकली। चित्रसेन, प्रजा को सम्बोधित करके, हाथ हिला हिलाकर कह रहा था- "कुण्डलिनी द्वीप के वासियो! मैं आपके आन्दोलन और आपकी उचित माँग के बारे में जानता हूँ। मुझे दुःख है कि में भोग-विलास में फँसकर, आपकी कठिनाइयों को बहुत दिनों तक न जान सका। इसलिये आपकी यह माँग कि में राज-सिंहासन छोड़ दूँ, बिल्कुल न्याययुक्त और उचित भी है। में केवल राज-किरीट ही नहीं, अपितु उससे बड़ी चीज़ को भी छोड़ने जा रहा हूँ। परन्तु आप सब, अपने सेनानायक समरसेन की आज्ञाओं का पालन कीजिये और उनका समर्थन कीजिये। इसी में आपका कल्याण है।"

तुरन्त जनता राजा का 'जय जयकार' करने लगी। और राजा चित्रसेन मण्डप से नीचे कूद गया। यह सब कुछ क्षण भर में हो गया। मैंने और समरसेन ने नीचे देखा। तब तक राजा के प्राण समाप्त हो चुके थे।

वे हिल-डुल न रहे थे। क्रूर जन्तु भी, अचानक, किसी को कूदता देखकर यह बिना जाने कि कौन कूद रहा है, इधर उघर तितर बितर होकर भाग गये।

"सब ख़तम हो गया है। अब कुछ बाकी नहीं है।" कहता कहता समरसेन खम्भे के सहारे गिर-सा गया। उसकी आँखों में आँसू आ गये। वे मूर्छित से लगते थे।

मैंने जनता की ओर देखा। सब जगह खामोशी थी। इस आकस्मिक घटना के कारण वे स्तब्ध थे। समरसेन निर्जीव-सा हो गया। नरवाहन भी पथरा सा गया था।

तब वहाँ मृगशालाधिपति भागा भागा आया। "सेनानी ! अब, अब" वह कुछ कहना चाहता था, पर कह नहीं पा रहा था। वह काँप रहा था।

मैंने उसको इशारा कर अपने पास बुलाकर कहा-"अब यह देखो कि ये क्रूर-जन्तु फिर से अपने पिञ्जड़ों में बन्द कर दिये जायें। यह काम जितनी जल्दी हो जाय, उतना ही अच्छा है। एक दो मिनिट में मैं किले की ड्योढ़ी खुलवाने जा रहा हूँ। महाराजा की लाश आँगन से हटाकर किसी दूसरे सुरक्षित स्थान पर अच्छी तरह से रखवाओ।"

समरसेन मेरी बात सुन रहा था। कुछ दूर खड़े नरवाहन ने मेरी तरफ तिरछी नज़र से देखा, फिर वह मण्डप में चला गया। न जाने वह क्या सोच रहा था!

थोड़ी देर में क्रूर-जन्तुओं को उनके पिञ्जड़ों में बन्द कर दिया गया। चित्रसेन की लाश भी आँगन से हटा दी गई। मैं और समरसेन राजमहल से ड्योढ़ी की तरफ गये। हम ड्योढ़ी के पास पहुँचे ही थे कि जनता 'जय जयकार' करने लगी। "जय समरसेन की! समरसेन की जय।"

उनके जय जयकार से आकाश गूञ्ज रहा था। उन में एक विचित्र उत्साह आ गया था। बड़ा शोर हो रहा था।

ड्योढ़ी खोल दी गई। समरसेन दो चार कदम आगे बढ़ा और गला ठीक कर कहने लगा-"कुण्डलिनी द्वीप वासियो!" उसके यह जोर से कहते ही, सब शोर सहसा समाप्त हो गया। "जो कुछ गुजर गया है, मैं उसके बारे में जिक्र नहीं करना चाहता हूँ।" समरसेन ने कहा। "देश में अराजकता फैली हुई है, यह बात सच है। इसके लिए, कौन कितने जिम्मेवार हैं, यह अब सोचने का विषय नहीं है। आज राजा नहीं है, इसलिए राज-भक्ति की भी अवश्यकता नहीं है। आज आवश्यक है कि प्रत्येक देशवासी देश-भक्त हो, देश की एकता की रक्षा करें। देश को शत्रुओं के आक्रमण से बचायें।"

"कुण्डलिनी द्वीप की जय।" जनता एक कण्ठ से चिल्लाती रही।

"नगर से बाहर, शत्रुओं की बलवती सेना, नगर पर आक्रमण करने के लिए तैयार खड़ी है। पहले नगर की

रक्षा, बाद में देश रक्षा। हर व्यक्ति, जो हथियार चला सकता हो, युद्ध के लिए तैयार हो जाये। देश रक्षा हर देशवासी का कर्तव्य है। आप अपने कर्तव्य का पालन कीजिए।" समरसेन ने कहा।

जनता में उथल-पुथल मची। सब के सब एक साथ आगे बढ़ने लगे। "मुझे तलवार दीजिये, मुझे बाण।" यही चिल्लाना सर्वत्र सुनाई पड़ता था। लोगों में धक्कम-धक-सी होने लगी।

समरसेन ने मुड़कर देखा। उसकी नज़र पीछे खड़े नरवाहन पर पड़ी। "इस बार तुम्हारा काम आसान है। सेना को

तैयार करो।" कहते कहते समरसेन पीछे की ओर चला। वे अब कुछ निश्चिन्त से दिखाई देते थे।

मैं, और समरसेन यहाँ से किले के बुर्ज पर गये। दूरी पर शत्रुओं के असंख्य तम्बू दिखाई दिये। चींटी की तरह दिखाई देनेवाले ये शत्रु उन तम्बुओं के सामने व्यायाम कर रहे थे। सब एक पंक्ति में तैनात खड़े थे।

"शिवदत्त! शत्रु कोई अनाड़ी नहीं है। वे काफी सीखे-समझे नज़र आते हैं। उनकी परेड़ से मालूम होता है कि वे व्यूह-रचना, युद्ध आदि में, प्रवीण लगते हैं।" समरसेन ने कहा।

समरसेन का कहना बिल्कुल ठीक था। शत्रुओं की तैयारी देखकर सचमुच ऐसा लगता था कि वे कोई अशिक्षित विद्रोही नहीं है, पर उनकी अपनी एक सुसज्जित सेना है। युद्ध के सब साधन भी उनके पास मौजूद थे।

मैंने किले की दीवार के बाहरवाली खाई की ओर देखा। उसमें काफ़ी पानी नहीं था। तुरन्त मैंने एक सिपाही को बुलाकर आज्ञा दी कि

खाई भर दी जाय। तब समरसेन ने मेरी तरफ मुड़कर कहा-"शिवदत्त! मुझे ही सेना के नेतृत्व कार्य सम्भालना पड़ा। इसके सिवाय कोई चारा नजर नहीं आता। तो क्रिले की रक्षा का भार तुम्हें सौंप दूँ। जल्दी कहो, तुम्हारी क्या राय है?"

मैं तुरन्त उस प्रश्न का जवाब न दे सका। अगर मैं किले की रक्षा की जिम्मेवारी लेता तो इसका मतलब यह हुआ कि मैं सेना के साथ शत्रु का मुकाबला करने न जा सकूँगा। उस हालत में, नरवहन ही उप सेनापति के रूप में समरसेन के साथ

जा सकेगा। मैं दुविधा में इस उलझन से बाहर निकलने का उपाय सोच ही रहा था कि नरवाहन वहाँ सीना तानकर आ पहुँचा।

"महासेनानी। मैंने सुशिक्षित सैनिकों को एकत्र कर लिया है। जनता में चार हजार हट्टे-कट्टे आदमियों को चुनकर मैंने इथियार दे दिये हैं। वे युद्ध के लिये उतावले हो रहे हैं। बतलाइये, अब क्या किया जाय।" नरवाहन ने पूछा।

समरसेन ने मेरी तरफ मुड़कर कहा-"नगर की रक्षा के लिए दो हज़ार आदमी काफी होंगे, मैं समझता हूँ।" मैंने भी सिर हिला दिया। "अच्छा; तो नगर की रक्षा की जिम्मेवारी तुम्हारी रही। मैं दो हज़ार सैनिक, और दो हजार हथियार बन्द आदमियों के साथ, शत्रुओं पर धावा बोलने जा रहा हूँ। हमारे बाहर जाते ही, नगर के द्वार बन्द कर देना। समझे?" समरसेन ने कहा।

सेना के, नगर की ड्योढ़ी से बाहर जाते ही, मैं अपने पचीस सिपाहियों को लेकर नगर की मोर्चाबन्दी देखने निकल गया। जब मैंने मामूली हथियार-बन्द आदमियों को देखा तो मुझे ऐसा लगा कि वे यह भी न जानते थे कि हथियार कैसे पकड़े जाते हैं।

उनको एक साथ एक पंक्ति में खड़ा करना बहुत मुश्किल काम था। तिस पर वे आपस में इधर उधर की बातें कर कर, गुटों में बँट गये थे और आपस में लड़ाई-झगड़ा मोल लेने के लिए उतावले हो रहे थे।

(अभी और है)

भगवान की सलाह

एक देश में कोई ग़रीब किसान रहा करता था। उसके सात बच्चे थे। कई बार ऐसी नौबत आती कि घर में ढूँढने पर भी अन्न का दाना न मिलता, पीने को माँड़ भी न रहती। किसान में, न काम करने की शक्ति थी, न चोरी वगैरह करने का साहस ही।

एक बार रास्ते के पास खड़ा होकर किसान सोच ही रहा था कि क्या किया जाय कि एक पराक्रमी अघोरी उस तरफ से गुज़रा।

"नमस्ते महाराज! कहाँ जा रहे हैं?" किसान ने हाथ जोड़कर पूछा।

"भगवान के पास।" अघोरी ने कहा।

"क्यों?"

"मनुष्य का कर्तव्य जानने के लिए।"

"आपका भला होगा, भगवान से यह भी पूछते जाइये कि मुझे क्या करना चाहिये?" किसान ने बड़े विनय से कहा।

"अच्छा!" अघोरी अपने रास्ते पर चलता गया। वह अघोरी बहुत धोखेबाज था। यह समझकर कि वह भगवान से बातचीत कर सकता था, कई भोले-भाले लोग हमेशा इसकी मदद किया करते थे। उन से रूपया पैसा लेकर, अघोरी चला जाया करता और कुछ दिनों बाद आकर हरेक को कहा करता-"भगवान ने तुम्हें 'यह' करने को कहा है।" लोगों को इस तरह धोखा देकर अघोरी ने काफी पैसा बना लिया था। वह जड़ीदार वस्त्र पहनता। उसके घोड़े की जीन भी सोने की थी। ठाटबाट की जिन्दगी बसर करता था।

किसान अघोरी की प्रतीक्षा करता रहा।

उसके आते ही उसने पूछा-"क्या मेरे बारे में भगवान से कुछ बातचीत की थी? भगवान ने मुझे क्या सलाह दी है?"

श्री श्याम प्रसाद जैन

"मैं तेरी बात भगवान से पूछना भूल गया।" अघोरी ने कहा।

अगले दिन भी किसान अघोरी की इन्तजार करता हुआ सड़क के किनारे बैठ गया। उसके आते ही उसने कहा-"इस बार बिना भूले, भगवान से मेरी बात पूछना।" अघोरी ने "हाँ" कह दिया, परन्तु वापिस जाते समय जब किसान दिखाई दिया तो उसने कहा-"तेरी बात भूल गया भाई!" अघोरी के मन में शायद यह भावना थी कि इस तरह कहने से वह उसे दो-चार पैसे पकड़ा देगा।

तीसरी बार फिर किसान ने अघोरी को घोड़े पर आते देखा।

"कम से कम आज तो भगवान से मेरे बारे में कहना। आपका भला होगा। इस गरीबी के कारण मरा जा रहा हूँ।" किसान ने अघोरी की अनुनय-विनय की।

"इसमें क्या बड़ी बात है? जरूर पूछूँगा।" अघोरी ने कहा।

"नहीं, आप फिर भूल जाएँगे। आप अपने सोने की रिकाबी, मेरे पास रखवा कर जाइये। अगर यह रिकावी मेरे पास रख दी, तो जन्म-भर मुझे न भूलेंगे।" किसान ने कहा।

अगर रिकावी देने से मना करता है, तो अघोरी को डर लगा कि किसान कहीं उसे लात न जमा दें। वह पराक्रमी तो समझा जाता था पर वस्तुतः वह उतना पराक्रमी था नहीं। इसलिए वह कुछ कर न सका। लाचार हो उसने जीन से एक रिकाबी निकालकर उसको दे दी।

उसकी वापसी की प्रतीक्षा करता करता किसान सड़क पर ही बैठा रहा। अघोरी के आते ही उसने बड़ी जल्दी में पूछा-"भगवान ने मेरे बारे में क्या बताया है?"

अगर तूने मेरी रिकावी न ली होती, तो मैं फिर तेरी बात भूल जाता। सब की बातें पूछकर में घोड़े पर चढ़ने वाला ही था कि रिकाबी न पाकर, तेरी बात याद आ गई, और फिर वापिस जाकर तेरी बात पूछकर आया।" अघोरी ने कहा।

"भगवान ने क्या मुझे इसी तरह जीने के लिए कहा है?" किसान ने पूछा।

"लोगों की आँखों में धूल झोंककर भगवान ने तुझे जीने के लिए कहा है। उससे अच्छा और कोई तरीका नहीं।" अघोरी ने कहा।

"आपने यह मदद कर, मेरा बड़ा उपकार किया है। नमस्ते महाराज!" कहता कहता किसान अपने घर की तरफ वापिस जाने के लिये मुड़ा।

"ठहर! कहाँ जा रहा है? मेरी सोने की रिकाबी मुझे देते जा।" अघोरी ने उससे कहा।

"कौन-सी रिकाबी?" किसान ने पीछे मुड़कर आश्चर्य से पूछा।

"वही, जो तुम ने मुझसे ली थी।" अघोरी ने किसान को रोकते हुए कहा।

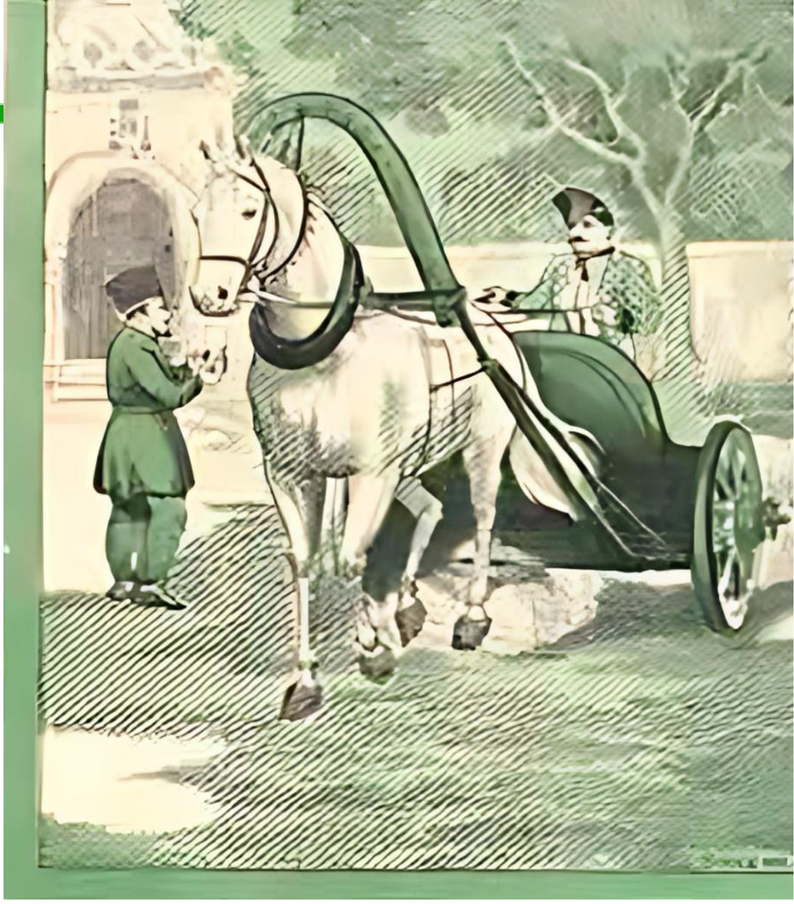

"मैंने आपकी रिकाबी कब ली थी? मैंने तो आपको पहले कभी देखा भी नहीं है।" किसान ने कहा।

अघोरी हैरान रह गया। उसे न सूझा कि क्या किया जाय? किसान को समझाया-बुझाया, पर कोई फायदा न हुआ। अगर लड़ता झगड़ता तो उसे डर था कि कहीं वह उसको न मार बैठे। "अगर यह रिकाबी मेरे पास रही तो आप जन्म-भर नहीं भूलेंगे।" वाली किसान की उस दिन की बात कतई सही थी। लाचार होकर अघोरी अपने रास्ते पर कहीं चला गया।

किसान, जो कोई दीखता, उसको सोने की रिकाबी बेचने की कोशिश करता। एक दिन एक जमीन्दार ने किसान से रिकाबी के बारे में भाव-तोल किया।

"कितने में बेचोगे?" जमीन्दार ने पूछा।

"पन्द्रह सौ मुहरों में दे दूँगा।" किसान ने कहा।

"क्या इस का दाम पन्द्रह सो मुहरे हैं?"

"महाराज! यह रिकाबी सोने की बनी है। आप इसे समझते क्या है?"

जमीन्दार ने जब अपना बटुआ टटोला तो एक हजार मोहरें ही थीं।

"यह लो, हज़ार मोहरें। रिकाबी दे दो। बाकी पाँच सौ मुहरें घर पहुँचकर भिजवा दूँगा।" जमीन्दार ने कहा।

"हज़ार मुहरें दे दीजिए, लिए लेता हूँ। परन्तु जब तक मेरे हाथ में पन्द्रह सौ मुहरें नहीं आ जाती, तब तक रिकाबी न दूँगा।" किसान ने कहा।

जमीन्दार हजार मोहरें देकर घर चला गया। तुरन्त उसने नौकर के हाथ पाँच सौ मोहरें देकर किसान के पास भेजी।

नौकर ने किसान के झोपड़े में आकर कहा-"हुजूर ने आपको पैसे देने के लिए कहा है। ले लीजिए।"

"देने के लिए कहा है तो दे दे।" किसान ने कहा।

नौकर ने पाँच सौ मुहरें किसान के हाथ में रखकर कहा-"अब सोने की रिकाबी दे दीजिए। मुझे जाना है।"

"कौन-सी रिकाबी?" किसान ने पूछा।

"वही रिकाबी, जो हमारे मालिक ने पाच सौ मुहरें देकर आपके पास से खरीदी है।" नौकर ने कहा।

"मेरे पास सोने की रिकावी कहाँ है?" किसान ने पूछा।

"नहीं है तो पैसे क्यों लिए थे? वापिस दे दो।" नौकर ने कहा।

"पैसा?" किसान ने पूछा।

"मैंने अभी अभी तो तुम्हें पाँच सौ मुहरें दी थी।" नौकर ने कहा।

"मैंने तो अपनी आँखों से पाँच सौ कौड़ियाँ भी नहीं देखी हैं।" किसान ने खीझते हुए कहा।

नौकर ने वापिस जाकर किसान की झूठी बातों के बारे में जमीन्दार से कहा।

किसान के घर जाकर जमीन्दार ने पूछा-"पैसे लेकर सोने की रिकाबी देने से इनकार करता है, दगाबाज कहीं का?"

"मैं गरीब हूँ। खाने को भी नसीब नहीं। मेरे पास भला सोने की रिकाबी कहाँ से आयेगी?" किसान ने कहा।

"चल अदालत में।" जमीन्दार ने कहा।

"इसमें क्या बात है? पर मैं गरीब हूँ। खाने-पीने को भी नहीं। मेरे कपड़े ही देखिये। आप सामन्त हैं। आप मेरे साथ अदलत कैसे चल सकेंगे? अच्छे कपड़े मिल जायें, तो मैं आपके साथ आ सकता हूँ।" किसान ने कहा।

"कपड़ों में क्या रखा है। मैं दिला दूँगा। चलो।" जमीन्दार ने कहा। जमीन्दार के दिये हुए अच्छे कपड़े पहनकर किसान उसके साथ अदालत गया।

"सोने के रिकाबी बेचने का वायदा कर, मुझ से पैसा ले, अब यह रिकावी देने से मुकर रहा है।" जमीन्दार ने अदालत में फ़रियाद की।

"मैं गरीब हूँ। मैं बच्चों को माँड़ भी खाने को दे नहीं पाता हूँ, भला मेरे पास सोने की रिकाबी कहाँ से आयेगी? ये बड़े आदमी मुझ से क्या चाहते हैं, मैं नहीं समझ पा रहा हूँ। शायद थोड़ी देर बाद मेरे पहने हुए कपड़े भी माँगने लग जायें।" किसान ने कहा।

"क्या ये कपड़े मेरे नहीं है?" जमीन्दार ने आश्चर्य से पूछा।

"देखा आपने? यह क्या इन्साफ है?" किसान ने न्यायाधिकारी से कहा।

न्यायाधिकारी ने जमीन्दार की शिकायत रद्द कर दी। उसने दोनों को भेज दिया। किसान भगवान की सलाह का पालन करता हुआ आराम से जीने लगा।

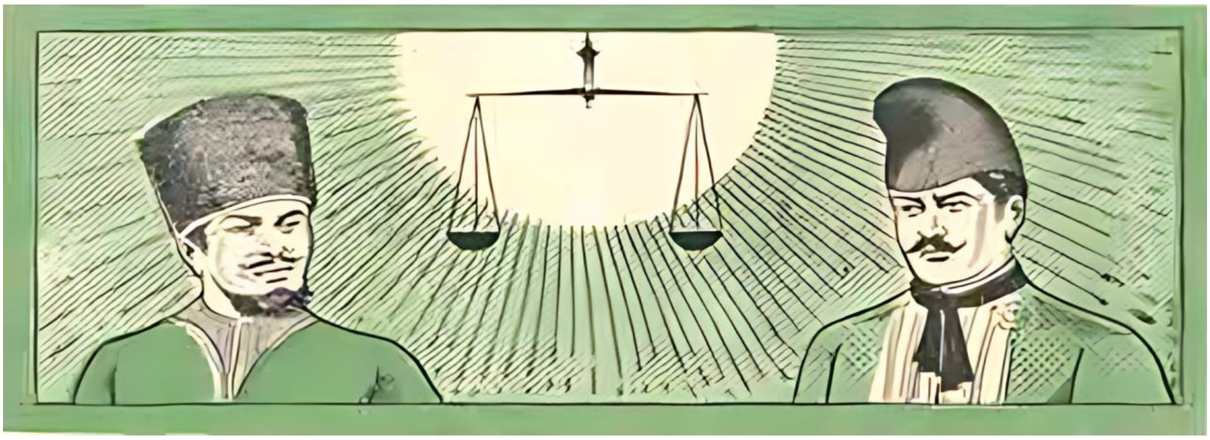

एक बार राजा भोज, घोड़े पर सवार हो, शिकार खेलने जा रहा था। जङ्गल के रास्ते

में एक नाला पड़ता था। सिर पर लकड़ियों का गठ्ठर रख, एक ब्राह्मण उनको नाला

पार करता नजर आया। वह ब्राह्मण जङ्गल से लकड़ियाँ काटकर ला रहा था। राजा और उस ब्राह्मण में इस प्रकार का सम्भाषण हुआ:

भोज-"कियन्मानं जलं, बिप्र?"

(हे ब्राह्मण! पानी किनना गहरा है?)

ब्राह्मण-आनुदनं नराधिप।

(राजा! घुटनों तक है।)

भोज-"ईदृशी किमवस्थाते?"

(तुम्हारी यह हालत क्या है?)

ब्राह्मण-नहि सर्वे भवादृशाः।"

(क्या सब आपके समान हो सकते हैं?)

राजा भोज को ब्राह्मण का अन्तिम उत्तर बहुत पसन्द आया और उससे न रहा गया। उसने कहा-"तुम तुरन्त कोशाध्यक्ष के पास जाओ, और मेरा नाम लेकर, एक लाख रुपये ले लो।" यह कह राजा अपने रास्ते पर शिकार खेलने चला गया।

यह सुन ब्राह्मण बहुत सन्तुष्ट हुआ, और लकड़ियों का गठ्ठर बहीं फेंक, वह सीधा राजा के महल में गया। कोशाध्यक्ष का दर्शन कर उसने निवेदन किया-"राजा भोज ने आपसे कहकर लाख रुपये लेने के लिये कहा है। वे अभी अभी उधर से शिकार खेलने गये हैं।"

ब्राह्मण का हुलिया देखकर कोशाध्यक्ष को विश्वास न हुआ। उसने कहा-"बिना राजा की आज्ञा के कोशागार से एक रुपया भी नहीं दिया जा सकता है, जाओ घर जाओ।" राजा भोज के शिकार से

श्री उमा शङ्कर झा

वापस आने पर ब्राह्मण फिर एक बार कोशाध्यक्ष के पास गया।

"राजा ने तो मुझसे इस विषय में कुछ भी नहीं कहा है। रुपया कैसे दिया जा सकता है?" कोशाध्यक्ष ने पूछा।

"क्या आपसे उनकी इस सम्बन्ध में बातचीत नहीं हुई?" ब्राह्मण ने पूछा।

"अगर उन्होंने देने का वायदा किया होता तो क्या वे मुझसे न कहते? चाहते हो तो तुम स्वयं जाकर पूछ लो।" कोशाध्यक्ष न खीझकर कहा।

ब्राह्मण को बड़ा गुस्सा आया। वह राजा भोज के दर्शन करने गया और उनके समक्ष उसने यह श्लोक सुनाया :

राजन् कनकधाराभिः त्वयि सर्वत्र सर्पीति

अमारयच्छत्र सम्पन्ने मयि नायान्ति विदवः

त्वयि वर्षात पर्जन्ये सर्व पल्लविता द्रुमाः

अस्माक मके वृक्षाणां पूर्व पत्रेषु संशयः

("हे राजन्! आप यद्यपि सर्वत्र सोने की वर्षा करा रहे हैं, परन्तु छाते के के नीचे खड़ा मैं ही एक ऐसा अभागा हूँ कि मुझ तक एक बून्द भी नहीं आती। आपकी बरसायी हुई वर्षा से सब पेड़ो पर नये नये पत्ते आ गये हैं, पर मुझ जैसे धतूरे के वृक्ष के सूखे पत्ते भी जाते मालूम होते हैं।")

राजा भोज धन-धान्य देंगे, यह सोच जङ्गल में लकड़ियों के काटने का काम भी, ब्राह्मण ने छोड़ दिया था। राजा भोज को उसकी बुरी हालत मालूम हो गई। उन्होंने तुरन्त कोशाध्यक्ष को बुलवाकर आज्ञा दी-

"इस ब्राह्मण को फौरन तीन लाख रुपये, दस हाथी, पारितोषक के रूप में देकर सादर भेज दो।" ब्राह्मण यह सुन बहुत ही प्रसन्न हुआ और राजा भोज की प्रशंसा करता करता घर चला गया। वह सुख से रहने लगा।

बुद्धु बहिन

किसी गाँव में एक किसान रहा करता था। वह हमेशा लक्ष्मी की पूजा करता। इसलिए उस पर लक्ष्मी किसी प्रकार की कठिनाई न आने देती।

एक बार, लक्ष्मी देवी अपनी बड़ी बहन, ज्येष्ठा देवी के साथ, उस किसान के गाँव के पास गई। रास्ते में लक्ष्मी ने अपनी बहन को एक खेत दिखाकर कहा-"बहन! यह खेत देखा, कैसी अच्छी फसल लग रही है? यह खेत एक किसान का है। वह बहुत अच्छा भक्त है। उसके हाथ में मिट्टी भी सोना हो जाती है।"

ज्येष्ठा देवी ने नाक भौं चढ़ाकर खेत की तरफ और से देखा। फसल पर उसकी नज़र लग गई। "एक सप्ताह में में भयङ्कर वर्षा कर सारी फसल खराब कर दूँगी। तू तो ऐसी बात कर रही है, जैसे किसान ने इस फसल से अभी पैसे बना लिये हों।" बड़ी बहिन ने कहा।

रात को, लक्ष्मी देवी ने किसान के घर जाकर उससे कहा-"अरे भाई! अगर तू अपनी ख़ैरियत चाहता है तो कल ही जाकर सेठ बनवारीलाल को अभी अपनी सारी फसल बेच दे।" किसान ने उसकी सलाह के अनुसार, खड़ी फसल सेठ को बेच दी।

सप्ताह समाप्त भी न हुआ था कि जोर से वर्षा हुई। लगभग सभी को नुकसान हुआ। पर किसान का तो सारा खेत ही खराब हो गया।

फिर एक बार दोनों बहनें उस तरफ आई। "देखा, किसान की क्या हालत हुई है?" बड़ी बहन ने पूछा।

"लगता है कि किसान को तो कोई नुकसान नहीं हुआ है। क्योंकि उसने

कुमारी बिनीता माथुर

अपनी फसल पहले ही सेठ को बेच दी थी।" लक्ष्मी ने कहा।

"ओहो, ऐसी बात है? यूँ ही, बिचारे सेठ का फालतू नुकसान होगा। खैर में ऐसा करूँगी कि खेत न खराब हो और पूरी फसल पैदा हो।" बड़ी बहिन ने कहा।

लक्ष्मी ने फिर किसान के पास जाकर कहा-"अरे भाई, सेठ से अपनी फसल फिर खरीद ले। बस माँगने की देर है वह तुरन्त देने को मान जायेगा।"

किसान ने सेठ के पास जाकर कहा- "बाबू! मेरी फसल खरीदकर आपको बड़ा नुक़सान हुआ है। नुकसान भी हम आधा आधा बाँट लें। फसल मुझे दे दीजिये, जो पैसे आपको मुझे देने थे, मैं छोड़ देता हूँ।" सेठ मान गया और नया दस्तावेज़ लिखकर उसने किमान को दे दिया।

किसान का खेत फिर हरा-भरा हो गया। एक दाना भी बेकार न गया।

मामूली फसल की अपेक्षा, अच्छी फसल हुई। दोनों बहनें उस तरफ आई। "देखा, मैंने सेठ को नुकसान होने नहीं दिया।" बड़ी बहन ने

कहा। "फसल को किसान ने वापिस खरीद लिया था। फायदा तो किसान को हुआ, और नुकसान सेठ को।" लक्ष्मी ने कहा।

बड़ी बहन ने दाँत कटकटाते हुए कहा-"धूर्त! जो कुछ में सोचती हूँ, वह उससे बचने के लिये कुछ कर ही लेता है। उसे एक ढेर से दो बोरे धान भी न मिलेगा।" लक्ष्मी ने तीसरी बार किसान के पास जाकर कहा- "भाई! जब तू धान काटे तो उसके कई ढेर बनाना और अलग अलग खलिहान में धान निकालना।"

किसान ने उसी प्रकार, धान के छोटे छोटे ढेर लगाये और अलग अलग खलिहान

में उसे पिसवाया। हर ढेर से दो बोरा धान निकला और धान इतना ज्यादा हो गया कि उसको जमा करने के लिए किसान को नई कोठरियाँ बनवानी पड़ीं।

थोड़े दिनों बाद जब दोनो बहनें उस तरफ जा रही थीं, तो बड़ी बहन ने कोठरियों को देखकर पूछा-"ये क्या है?"

"तेरे कहने का ही फल है। तूने ही तो कहा था कि एक एक ढेर से दो दो बोरे धान निकले। अब धान को रखने की जगह न थी। इसलिए उसको ये कोठरियाँ बनवानी पड़ी।" लक्ष्मी ने कहा।

तब बड़ी बहन को पता लगा कि यह सब उसकी बहन की ही करामात थी। "देखना! इस किसान का क्या करती हूँ।" बड़ी बहन ने कहा।

"क्यों, क्या करेगी?" लक्ष्मी ने पूछा।

"मैं अब तुझे कुछ न बताऊँगी।" बड़ी बहिन ने कहा। लक्ष्मी ने उस रात को किसान को एक तरीका बताया। अगले दिन, जब दोनों बहनें उसके घर के पास गई तो वहाँ बाजे-नगाड़े बज रहे थे।

"यह क्या है? देखें।" लक्ष्मी ने कहा।

दोनों मनुष्य का वेष धारण कर अन्दर गयीं। किसान किसी पूजा में लगा था। "बेटा! किसकी पूजा कर रहे हो?" लक्ष्मी ने उससे पूछा।

"ज्येष्ठा देवी की पूजा करने जा रहा हूँ।" किसान ने कहा।

बाहर आने पर, लक्ष्मी ने अपनी बहन से कहा-"बहन, तू तो समझ रही थी कि मैंने कुछ किया है। वह पहले ही जानता है कि यह सब तेरी ही दया है।"

"अच्छा! तो वह बहुत योग्य आदमी है।" बड़ी बहन ने कहा।

एक गाँव में कोई ब्राह्मण रहा करता था। उसे वेद वगैरह न आते थे। परन्तु पूजा पाठ का काम करने के लिए उसे ज़रूर दो-चार मन्त्र आते थे। पर क्योंकि वह बहुत नीच था, इसलिए उसे कोई पूजा-पुरोहितार्थ के लिए भी न बुलाता। सब उसे दूर ही रखते। जब भूखों मरने की नौबत आई तो वह जगह जगह घूमने लगा।

किसी गाँव के पास, ब्राह्मण को एक शिवालय दिखाई दिया। उस मन्दिर में पूजा-पाठ न होता था। ब्राह्मण ने उस मन्दिर में धरना जमा दिया और वह उस मन्दिर का पुजारी बन गया। वह गाँव में जाकर झूठी झूठी बातें बनाने लगा कि भगवान उसको स्वप्न में दिखाई दिये थे और उस मन्दिर में पूजा करने के लिए उससे कहा था। इसीलिए वह इतनी दूर से आया है- आदि आदि।

यह जानकर कि शिवालय में पूजा-पाठ हो रहा है, गाँववाले आकर तरह तरह के नैवेद्य चढ़ाने लगे। परन्तु पुजारी को उसकी इच्छानुसार पैसे न मिले। ईश्वर की महिमा दिखाने के लिए, उसने इधर-उधर के प्रयत्न किये, पर कोई फायदा न हुआ। खाने-पीने को मिल जाता था, पर वह एक दमड़ी भी न जमा पाता था। उसे कोई उपाय न सूझा।

आखिर वह ऊब गया। एक दिन, रात को, शिवलिङ्ग को लात मार, उस दिन का प्रसाद इकठ्ठा कर, बोरिया-बिस्तर बाँधकर वह शिवालय छोड़कर कोई दूसरा गाँव चला गया।

सवेरे सवेरे, पुजारी को एक बूढ़ा दिखाई दिया। दोनों की कोई मञ्जिल न थी। बूढ़े ने कहा-"मुझे भी साथ ले

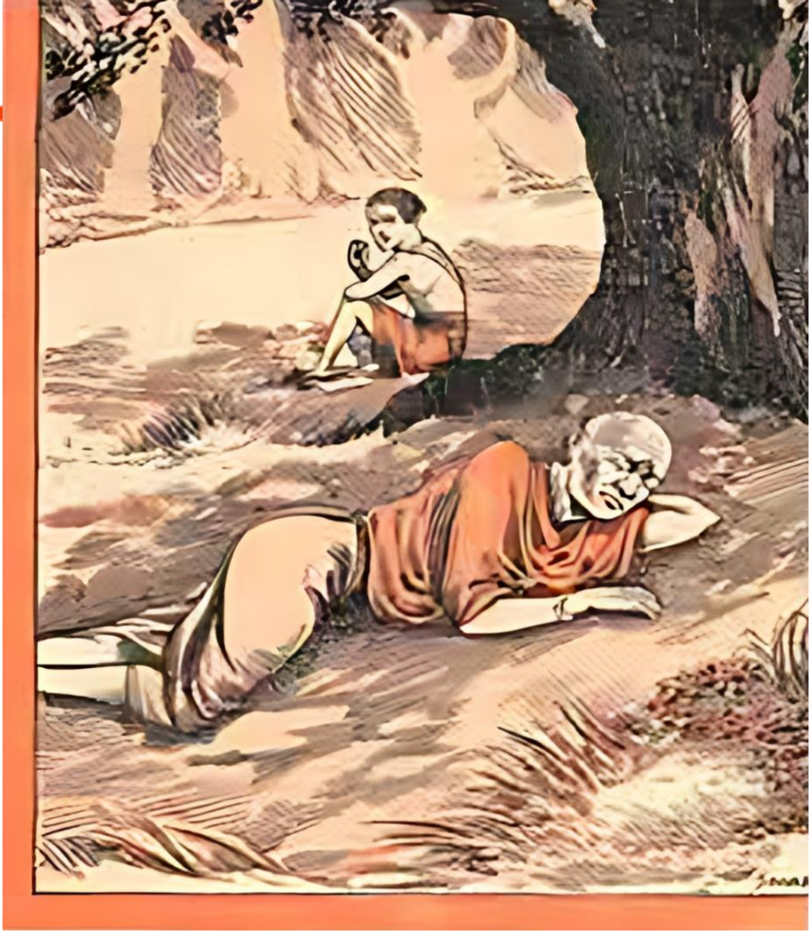

चलो। उम्र हो गई है। मेरी कोई पूछ-ताछ करने वाला भी नहीं है। अकेला सफ़र कर नहीं पाता हूँ।" उसकी बातें सुनकर पुजारी मान गया।

दोपहर हो गई। दोनों राहगीर, एक पेड़ के नीचे खाने के लिए बैठे। "मेरे पास काफी चूड़ा है, पहले वह खा लें। अगर पेट न भरा तो जो तुम्हारे पास है, उसे खायेंगे।" बूढ़े ने कहा। पुजारी ने इस विषय में कोई आपति न की।

पर जब खाने बैठे, तो दोनों मिलकर चूड़ा न खा सके। बूढ़े ने तो इतना खा लिया कि वह पेड़ के नीचे आराम से सोने लगा। यह मौका देख ब्राह्मण ने बूढ़े की चूड़े की पोटली खोली, और बचे हुए चूड़े को आराम से खा लिया।

बूढ़े ने उठकर पोटली टटोली। जब उसे वह कहीं न दिखाई दी तो उसने पुजारी से पूछा-"मेरी चूड़े की पोटली क्या हुई? कहीं तुमने खा तो नहीं लिया है?"

"नहीं तो, मैंने तो उसे देखा तक नहीं।" पुजारी ने कहा।

"खैर, जाने दो।" बूढ़े ने कहा। फिर वे वहाँ से किसी और देश में गये। उस देश की राजकुमारी बहुत सख्त बीमार थी। राजा ने घोषणा कर रखी थी कि जो कोई उसकी बीमारी ठीक कर देगा, उसको खूब ईनाम मिलेगा।"

यह जानकर बूढ़े ने पुजारी से कहा-"इस राजकुमारी की बीमारी हम आसानी से ठीक कर सकते हैं। आओ, उसको मृत्यु के मुँह से बचायें।"

"अगर हमने यह काम किया तो राजा हमें ढेर भर सोना देगा।" पुजारी ने ललचाते हुए कहा। दोनों मिलकर राजमहल में गये। राजकुमारी आखिरी साँसें ले रही थी।

"महाराज! अगर आप चिकित्सा कराते कराते निराश हो गये हो, तो आप अपनी लड़की को हमें सौंप दीजिये। हम उनकी चिकित्सा करेंगे। परन्तु हमारी चिकित्सा आप नहीं देख सकेंगे।" बूढ़े ने राजा से कहा।

और कोई रास्ता न था, इसलिए राजा उसको अपनी लड़की सौंपने को मान गया। चिकित्सा के लिए एक घर दे दिया गया। बूढ़े ने यज्ञ के लिए एक गढ़ा खुदवाया। एक बड़े बर्तन में दूध मँगवाया। सिवाय पुजारी के उसने सब को बाहर भेज दिया। किवाड़ों पर चटखनियाँ लगा दी गयी थीं।

पुजारी उत्कण्ठा से यह देखने लगा कि बूढ़ा क्या चिकित्सा करता है। बूढ़े ने राजकुमारी को उठाकर यज्ञ कुण्ड में डाल दिया। थोड़ी देर में वह भस्म हो गई।

"वाह! अब मैं इसको जिन्दा करूँगा।" कहते हुए, बूढ़े ने राजकुमारी की हड्डियाँ बाहर निकाली और उन्हें दूध के बड़े बर्तन में डाल दीं। तुरन्त राजकुमारी स्वस्थ हो उस बर्तन में से निकल आयी, मानों सोकर उठी हो।

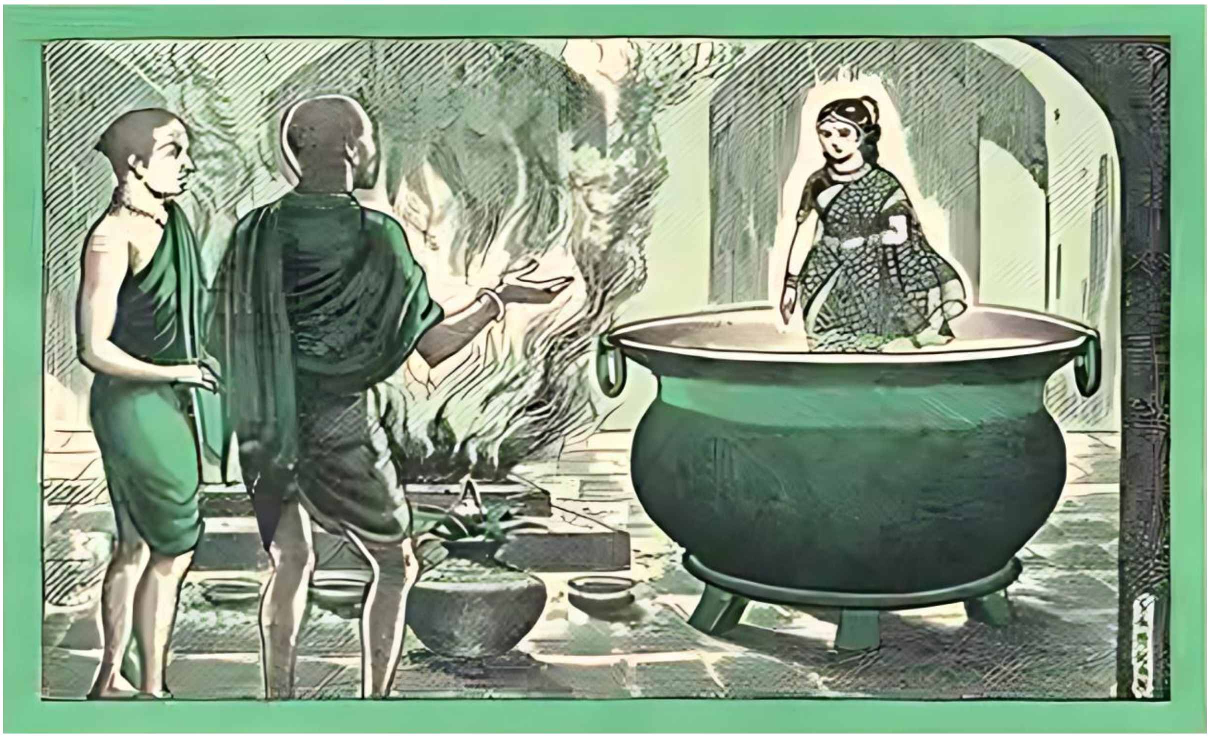

राजा बड़ा आनन्दित हुआ। उसने बूढ़े और पुजारी की खूब मान-मर्यादा की। उन्हें भोजन खिलाकर, उसने उनके सामने सोने की मोहरों को रखते हुए कहा-"अश्वनी कुमारों की तरह आकर आपने मेरी लड़की की रक्षा की है। चाहे कितना भी हूँ, मैं आपका ऋण नहीं चुका सकता। आप इस सोने में से जितना चाहें, आप ले लें। मुझे अनुगृहीत कीजिये।"

"मैं बूढ़ा हूँ। सोने को ढो नहीं पाऊँगा।" कहते हुए बूढ़े ने केवल हथेली भर मुहरें ले लीं। परन्तु पुजारी ने अपना तौलिया भर लिया और जितनी मोहरें वह ढो सकता था, उसने उठा ली।

यह देख, राजमहल के नौकरों ने सोचा कि शायद पुजारी ने ही वस्तुतः राजकुमारी को ठीक किया है। उनमें से एक ने पुजारी के पास जाकर धीमे से कहा-"यहाँ से पाँच कोस दूर एक और राजा है। उनकी पुत्री भी बहुत दिनों से रोगी है। आपको हमारी राजकुमारी की बीमारी दूर करने में अधिक समय ही न लगा। ऐसी हालत में उनकी बीमारी ठीक करने में आपको देरी क्या लगेगी?"

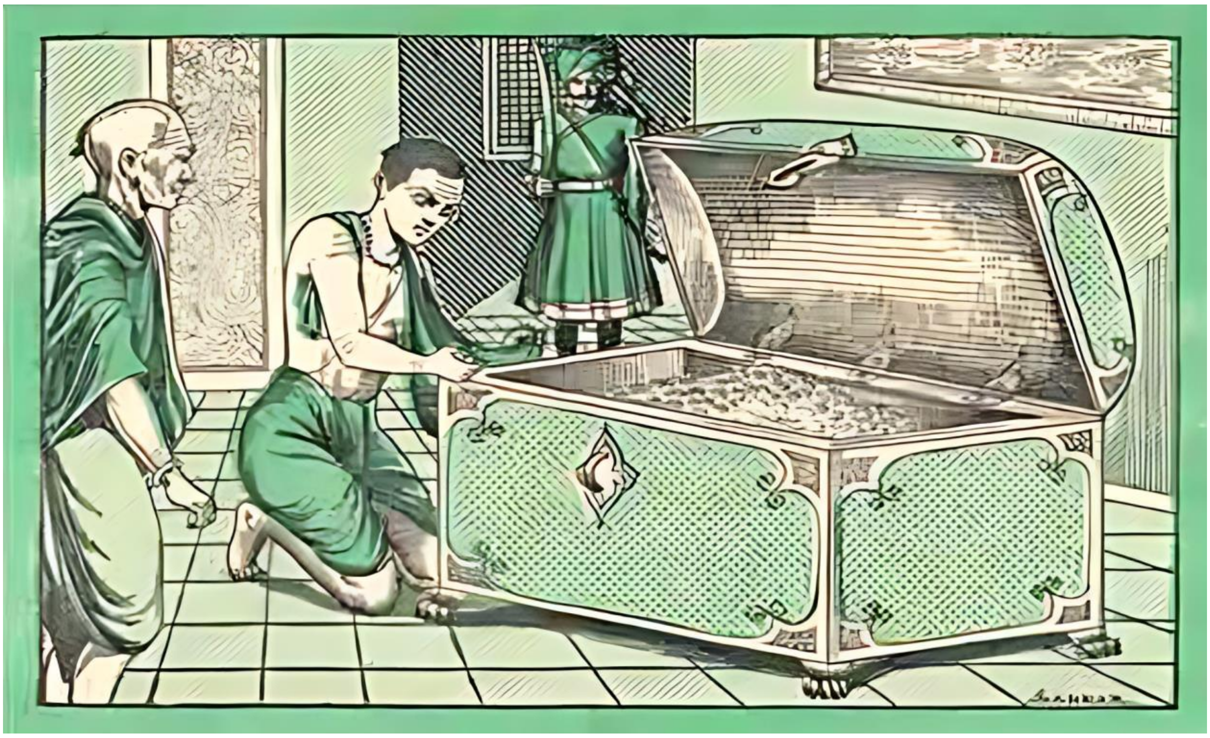

पायेगा, उसको प्राण दण्ड दिया जायेगा।

परन्तु पुजारी इस नियम के कारण घबराया नहीं। क्योंकि उसको बूढ़े की चिकित्सा पर पूरा विश्वास था। इसलिए बूढ़े को सराय में छोड़कर वह स्वयं राजमहल गया। उसने राजकुमारी की चिकित्सा करने का वचन दिया। प्राण दण्ड वाले नियम को भी वह मान गया। उसने यह भी बताया कि पहले उसने एक राजकुमारी की प्राण-रक्षा की थी। उस राजा के दिये हुए सोने को दिखाकर इस राजा को अपनी योग्यता पर विश्वास कराया। एक अलग घर लेकर, उसमें उसने एक यज्ञ-कुण्ड तैयार करवाया। एक बड़े बर्तन में दूध भी रखा गया। राजकुमारी को जीते जी यज्ञ-कुण्ड में डालकर, उसको भस्म कर दिया। उसकी हड्डियाँ उठाकर उसने दूध के बर्तन में डालीं। पर कुछ न हुआ। राजकुमारी जीवित न हुई।

पुजारी पथरा सा गया। उसे कुछ न सूझा। उसने दो तीन हड्डियाँ और उठाकर दूध में डालीं। वे भी दूध में तैर आईं। पुजारी के होश-हवाश उड़ गये। उसे न

पुजारी ने एक बार तो चिकित्सा करने की पद्धति देख ही ली थी। उसको अधिक रुपया-पैसा बनाने का लालच हुआ। कहीं ऐसा न हो कि बूढ़े को ईनाम मिले, इसलिए उसने इस विषय में उससे कहा तक नहीं। वे उस राज्य की ओर चल पड़े।

यह बात सच थी कि उस देश की राजकुमारी बहुत दिनों से रोगी थी। परन्तु क्योंकि धन के लालच से, इधर-उधर के वैद्य ऊँटपटाङ्ग चिकित्सा कर राजकुमारी को और रोगी बना गये थे, इसलिए राजा ने यह नियम बना दिया था कि जो कोई वैद्य राजकुमारी की चिकित्सा न कर

मालूम हुआ कि चिकित्सा में क्या कमी रह गई थी। उसने वही चिकित्सा की थी, जो बूढ़े ने पहली राजकुमारी के लिए की थी। पर परिणाम वह न हुआ।

राज-सैनिकों ने आकर पुजारी को पकड़ लिया। राजा के गुस्से का तो ठिकाना ही न था। उसने हुक्म दिया कि पुजारी को फाँसी पर चढ़ा दिया जाये।

पुजारी ने राजा के पैरों पर गिरकर कहा-"सराय में मेरा एक बूढ़ा शिष्य है। मुझे थोड़ी देर के लिए छोड़ दीजिये। मैं उससे बातचीत करके आ जाऊँगा। मुझे अब भी आशा है कि आपकी लड़की फिर जीवित हो उठेगी।"

"अब तुम्हें एक क्षण भी नहीं छोड़ा जा सकता। भाग जाने की सोच रहे हो क्या? इस धूर्त को तुरन्त वध-स्थल ले जाओ।" राजा ने अपने सैनिकों से कहा। जब पुजारी फाँसी के तख़्त पर पहुँचा तो वहाँ बूढ़ा हाजिर था।

"अरे! मरने जा रहे हो? कम से कम अब तो बताओ कि मेरा चूड़ा किसने चुराया?" बूढ़े ने पूछा। "मुझे नहीं मालूम।" पुजारी ने कहा। फिर उसे

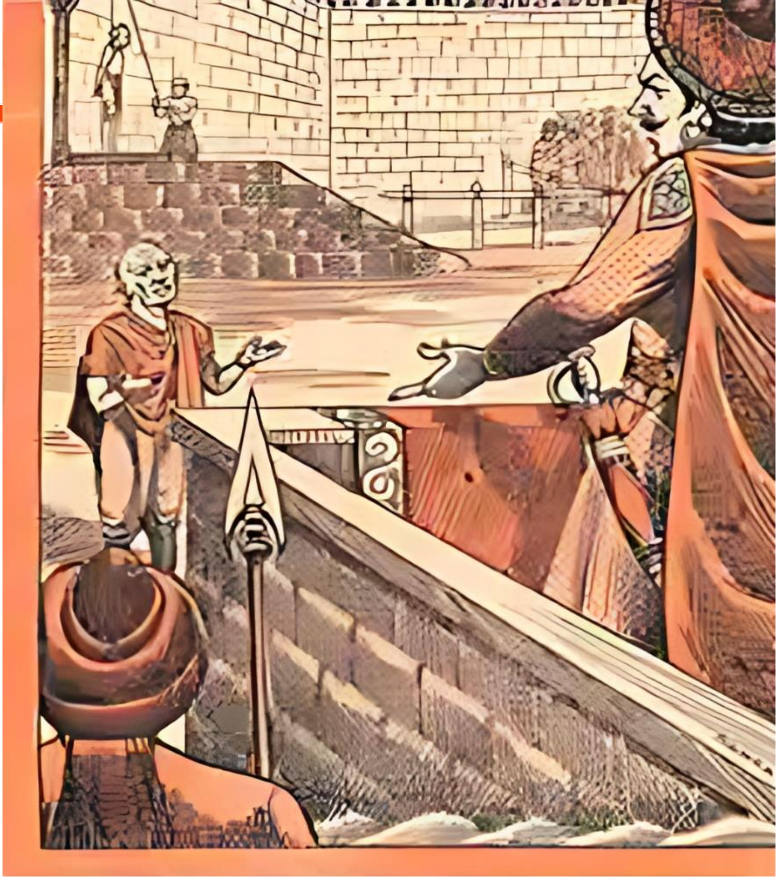

जल्लादों ने एक सीढ़ी और ऊपर चढ़ाया।

"अब भी बता दो। मेरा चूड़ा किसने चुराया।" बूढ़े ने पूछा।

"तुम्हारी कसम। मैं कुछ नहीं जानता।" पुजारी ने कहा। जल्लादों ने उसको एक और सीढ़ी चढ़ाया। बूढ़े ने फिर वही प्रश्न किया। पुजारी ने भी वही उत्तर दिया। जल्लादों ने उसको तीसरी सीढ़ी पर चढ़ाकर, उसके गले में फाँसी की रस्सी लगा दी। इस बीच में राजा भी वहाँ आ पहुँचा।

"घोड़ा ठहरिये। क्या में जान सकता हूँ कि इसको क्यों फाँसी पर चढ़ाया जा रहा है?" बूढ़े ने राजा से पूछा।

मेरी लड़की का इलाज तो अलग, इस दुष्ट ने उसे जीते जी ही मार दिया है।" राजा ने उससे कहा।

"मैं उनको जिला दूँगा। आप फाँसी रुकवा दीजिये।" बूढ़े ने कहा।

"हो सकता है, यह भी धोखा हो।" राजा ने कहा।

"मेरे साथ आप अपने सैनिक भेजिये। अगर मैं आपकी लड़की को न जिला दूँ, तो मुझे भी फाँसी पर चढ़ा दीजिये।" बूढ़े ने कहा।

अपने वचन के अनुसार बूढ़े ने राजकुमारी की कुछ हड्डियाँ लेकर दूध में डालकर, उसको पुनर्जीवित कर दिया। उसका पुराना रोग भी ठीक हो गया।

राजा बहुत आनन्दित हुआ। उसने पुजारी की सज़ा रद्द कर दी और प्राणो की रक्षा करनेवाले बूढ़े के लिए, एक लकड़ी के सन्दूक को सोने से भर सराय में भेज दी, जहाँ बुढ़ा ठहरा हुआ था।

"हम अब तक सुख-दुख में साथ साथ रहे हैं। मुझे इस सोने में भी आधा हिस्सा मिलना चाहिये।" पुजारी ने बूढ़े से कहा।

बूढ़ा मान गया और वह सोने के तीन हिस्से बनाने लगा।

"तीसरा हिस्सा उसका है, जिसने चोरी से मेरा चूड़ा खा लिया था।" बूढ़े ने जवाब दिया।

"चूड़ा मैंने ही तो खाया था।" पुजारी ने खुशी खुशी कहा।

बूढ़े ने गुस्से में, सिर उठाकर उसकी तरफ देखते हुए कहा-"तू परम नीच है। मेरा पुजारी बनकर, तूने मुझे भी अपवित्र कर दिया है।" यह कहते कहते वह बूढ़ा अदृश्य हो गया।

स्वार्थ कष्टों की जड़ है !

एक व्यापारी एक गधे, और एक घोड़े पर माल लादकर सफर कर रहा था। गधे पर बहुत भार लदा था। चलते चलते उसकी यह हालत हो गई कि वह आगे न चल सका।

तब गधे ने घोड़े से कहा-"भाई! अगर मेरी यही हालत रही तो मैं ज्यादा दूर न जा सकूँगा। मेहरबानी होगी, अगर मेरा थोड़ा-सा वजन तू भी ले ले।"

घोड़ा इसके लिए कतई राजी न हुआ। उसने कहा-"मैं भला तेरा भार क्यों ढोऊँ? जो जिसके नसीब में लिखा है, वह उसे भुगतना ही होगा।"

थोड़ी दूर बाद, थकान के कारण गधा गिरकर मर गया। व्यापारी ने तुरन्त गधे की खाल निकाली। गधे के भार और उसकी खाल घोड़े पर लाद कर वह चलता गया।

अब घोड़े पर बहुत वजन था। वह मुश्किल से पैर उठा पा रहा था।

"अरे! क्या मुसीबत आ पड़ी। अगर गधे के पूछने पर तभी मैं उसका कुछ भार ले लेता तो यह आफत न आती। गधे को मैंने मरने दिया, अब मेरी जान ही शामत में है।" घोड़ा सोचने लगा।

बच्चे देनेवाली कढ़ाई

एक बार गोहा को पकवान बनवाकर खाने की मर्जी हुई। परन्तु घर में बड़ी कढ़ाई न थी। उसने पासवाले घर में से कढ़ाई मँगवायी।

जब कढ़ाई से काम न रहा, तो गोहा ने उसमें एक छोटी सी कढ़ाई रखकर भेज दी। कुछ देर बाद पड़ोसवाले ने आकर पूछा-"हमारे कढ़ाई में छोटी-सी कढ़ाई क्यों रह गयी?"

"शायद तुम्हारी कढ़ाई ने बच्चे दिये होंगे।" गोहा ने कहा।

पड़ोसवाला चला गया।

कुछ दिनों बाद, गोहा ने फिर वही कढाई उधार मँगाई। पडोसवाले ने उसे दे दी। पर गोहा ने उसे लौटाने का नाम न लिया। काफी दिन इन्तजार करने बाद पड़ोसवाले ने गोहा के पास आकर पूछा "मैं यह नहीं कहता कि कढ़ाई अगर आपके पास रही तो खराब हो जायगी; पर उससे कुछ काम आ पड़ा है। क्या दिलवायेंगे?"

"कौन-सी कढ़ाई?" गोहा ने पूछा।

"वही, जिसने उस दिन बच्चे दिये थे।" पड़ोसी ने कहा।

गोहा ने आह भरकर कहा-"अरे भाई! जो चीज़ पैदा होती है, वह मरती भी है। जो अल्लाह से आती है, वह अल्लाह के पास पहुँच जाती है। वह विचारी तुम्हारी कढ़ाई तब ही मर गई थी।"

चतुर वैद्य

एक राजा की एक लड़की पैदा हुई। वह लड़कियों को नहीं चाहता था। वह इसी फिक्र में रहने लगा कि लड़की कब बड़ी होगी, और कब उसकी शादी होगी। फिर उसने यह ढिँढोरा पिटवा दिया कि जो कोई वैध अपनी लड़की को जल्दी ही बड़ा कर देगा, वह उसको एक लाख रुपये देगा।

राजा की घोषणा सुन एक वैद्य ने राजा के पास जाकर कहा-"महाराज! मैं यह काम कर सकता हूँ, मुझे लाख रुपये दिलवाइये।"

"चिकित्सा के लिये कितना समय लोगे?" राजा ने पूछा।

"एक महीने तक औषधी का सेवन करने से राजकुमारी बड़ी हो जायेंगी।" वैद्य ने कहा। राजा मान गया।

कई वर्ष बीत गये। राजा ने चिकित्सक को बुलाकर पूछा-"क्या चिकित्सा हो गई है?"

"राजन् ! जड़ी बूटियाँ अभी नहीं आयी है।" वैध ने कहा।

इस बीच में राजकुमारी सयानी हो गई। वैद्य ने कहा-"महाराज! चिकित्सा पूरी हो गई है।" राजा ने प्रसन्न होकर उसको एक लाख रुपये और दिये।

कल्पना

एक चित्रकार ने एक चित्र बनाया। चित्र में एक शिकारी ने अकेले एक शेर को मार दिया था। इस चित्र को देखने के लिये लोग जमा हो गये। बड़े शेर को मारनेवाले शिकारी की बहादुरी की वे प्रशंसा करने लगे।

इस बीच में वहाँ एक शेर आया। सब डर के कारण काठ हो गये। शेर ने चित्र देखा और लोगों की ओर मुड़कर कहा-"मित्रो! इस चित्र में आपने विजय पाई है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। परन्तु यह चित्रकार की कल्पना है। अगर हम शेर भी चित्र बनाना सीख जायें तो यह चित्र और वास्तविक होगा।"

जो लोग चित्र देखकर प्रसन्न हो रहे थे, यह बात सुनते ही, शर्मिन्दा होकर चले गये।

रंगीन चित्र-कथा चित्र – ७